रस एवं संगीत

पुष्पा डांगी
असिस्टैंट प्रोफैसर, संगीत वादन
एस.डी.पी.जी. कॉलेज, पानीपत

भारतीय सौंदर्य शास्त्र की भारतीयता का सबसे प्रबल प्रमाण रस सिद्धांत है। वैसे रस प्रत्येक भाषा में किसी न किसी रूप में आता है। सहस्त्रों वषों के इतिहास की परंपरा के पश्चात कला, सौंदर्य सम्बंधी अवधारणा बनी है, रस उसी का निचोड़ है। कुछ ने रस को भाव कहा है, ''भवतीति भावाः। भावयन्ति इति भावाः।''[1] परंतु रस और भाव में अंतर है। कुछ अन्य विद्वानो ने सौदर्यानुभूति रसानुभूति कह कर रस की व्याख्या की है। भारतीय संगीत शास्त्र और जीवन में रस शब्द का कई अर्थों में प्रयोग होता है। लोकप्रिय अर्थ है 'सार तत्त्व'। सार मधुर होना चाहिए ,माधुर्य और आनन्द प्रधान स्वर ही रस हो सकता है।

''वेदों में मधु, दुग्ध, जल आदि तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है, तो तैत्तिरीय उपनिषद् में स्वयं ब्रह्म को ही रस रूप कहा गया है।''रसो वै सः'' साहित्य के क्षेत्रों में भी काव्य के आस्वादन से ब्रह्म आनन्दानुभूति को ही रस कहते हैं,उसी प्रकार संगीत के क्षेत्रमें भी स्थायी स्वर, (अंश स्वर पर आलम्बित) उसके संवादी स्वर द्वारा उद्दीप्त, अनुवादी स्वरों द्वारा अनुभावित और अंचारी स्वरों द्वारा परिपोषित सहृदयों की चेतना विशेष को रस कहा जाता है।''[2] जहाँ आनन्द का अतिरेक होता है, वहाँ हमारा कोई स्वार्थ नहीं होता। जब आन्दतिरेक होता है तब हम गाते हैं आनन्द की स्थिति में हम चित्र बनाते हैं नाचने लगते हैं अतः रस का सम्बंध आनन्द से जुड़ा है यह सर्वमान्य है, रस का भाव आनन्द का भाव है। रस में चूंकि अधिक अनुभूतिगम्यता है इसलिए रस के द्वारा भाव की तीव्रता अधिक मानी गई है। रस संगीत का प्राण है। रस न हो तो संगीत का आनन्द ही श्रोताओं को न मिले। कलाकार और श्रोताओं में जो तादात्म्य स्थापित

होता है उसका आधार ही रस है। वास्तव में रस अनुभवजन्य है चाहे संगीत रस हो, चाहे काव्य रस जिसे हम रस अथवा आनन्दात्मक अनुभव कहते हैं वह स्थायी भाव की विलक्षण अनुभूति है। सफल अभिनय वही करता है जो नायक अथवा पात्र विशेष से अपना पार्थक्य भूल कर उस नाटक के भाव को ही आत्मसात कर लेता है। यह रसात्मक तादात्मय उस सीमा तक पहुँच जाता है, कि दर्शक उसे वास्तविक नायक अथवा पात्र मानने लगते हैं इस प्रतीति की अनुभूति ही रस है। संगीत में यह और भी मुखय उठती है। रसात्मक एकता के कारण गायक इतने सहज एवं स्वाभाविक रूप में अपनी सामग्री प्रस्तुत करता है कि श्रोताओं को श्रेष्ठ रसानभूति होने लगती है। यही श्रेष्ठ कलाकार की कसौटी है। भरतमुनि ने काव्य तथा संगीत को नाट्यशास्त्र के अन्दर स्थान दिया है ऋग्वेद में जो ऋचाएँ और छन्द मिलने हैं, वे सामवेद तक आकर गीतों में बदल जाते हैं उनकी ध्वन्यात्मकता ने ही संगीत का रूप धारण कर लिया है। भामह ,रुद्रट, उद्भट ने ही संगीत की प्राचीनता वेदों से मान रखी है।

''पंचविंश ब्राह्मण'' में संगीत का विशाद परिचय मिलना है और सात स्वरों का विवेचन है जिनमें मन्द्रतारतर और तारतम स्वरों का वर्णन मिलता है। पाणिनि और नंदीकेश्वर ने सात स्वरों का निरूपण किया है। रत्नाकर और अभिनव गुप्त ने अपने ग्रंथों में संगीत कला पर प्रकाश डाला है। जयदेव के गीतगोंविन्द में विस्तृत वर्णन मिलता है। अभिनव गुप्त नक भरत, शर्दूल और दत्तिल, उत्पलाचार्य, शारंगदेव आदि के संगीतका वर्णन किया है उन्होंने बताया है कि प्राणवायु सुषुम्ना पिगंला नाड़ियों द्वारा मस्तिष्क में पहुँचती है योग साधना से इसे रोक दिया जाता है और एक विशिष्ट स्थिति में आकर साधक अनिवर्चनीय आनन्द का अनुभव करता है। यह रस की चिर अवस्था होती है। इस अनुभूति में रस के साथ ध्वन्यातमकता की भी आवश्यकता है। संगीत में जिस भाव विह्वलता की स्थिति आ जाती है यह वही स्थिति है जो चित्र बनाते समय किसी चित्रकार की मूर्ति रचना में मूर्तिकार की और काव्य रचना में कवि ही होता है वस्तुतः रसात्मकता की चिरपरिणति जिस अवस्था में है वह सभी कलाओं में एक है।

संगीत की रसात्मक अभिव्यक्ति सूक्ष्मतम होती है। किसी भी कला का उपादान जितना सूक्ष्म है, अभिव्यक्ति वैसी सूक्ष्म होगी ,शिल्पी क

उपादान, ईंट, पत्थर,छेनी अत्यंत स्थूल हैं, अतः शिल्पी में भावों की सूक्ष्माभिव्यक्ति नहीं हो पाती। मूर्तिकार के उपादान धतु ,पत्थर आदि हैं। अपनी महीन छेनी से वह मूर्ति में झुर्रियों, उभार, उठान आदि के साथ, अनुभाव की अभिव्यक्ति अवश्य करता है परंतु हृदय के भावों को प्रतिमा के माध्यम से पूर्णतः व्यक्त करना संभव नहीं हो सकता। चित्रकला की तूलिकाएँ रंग जैसे उपादानों द्वारा, रेखाओं, रंगों की मौन अभिव्यक्ति, सूक्ष्म भावों को मुखरित नहीं होने देती। स्वर जैसा सूक्ष्म उपादान भावों की गहराई रहस्य को जैसा व्यक्त कर सकता है, अन्य उपादानों के लिए संभव नहीं है। यह रस की गहराई में जाता है अतः भावों की सूक्ष्मतम अभिव्यक्ति संगीत द्वारा ही संभव हैं।

हमारे शास्त्र ग्रंथों में संगीत के सन्दर्भ में रस के विषय में संकेत मिलते हैं। संगीत की व्यवहारिक साधना में 'रस' सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है और कला का प्राण भी। इस कारण 'रस' पक्ष आदि काल से ही संगीतज्ञों तथा संगीत शास्त्रीयों को समानरूपेणद उद्वेलित करता रहा है। भरत ने गीत वाद्य प्रयोग को दो प्रसंगों में कहा है–एक तो पूर्वरंग में और दूसरे नाट्य में। आज के गीत–वाद्य प्रयोग की स्थिति भी स्वतः रंजक होने की दृष्टि से पूर्वरंग के अंतर्गत गीत वाद्य सदृश ही है।

संगीतज्ञ रस निष्पत्ति कैसे करता है? संगीत रत्नाकर में इस पर विचार किया गया तथा 96 प्रकार गिनाए गये जिससे रस निष्पत्ति संभव है। इनके चार प्रकार प्रमुख हैं। उच्चार,लय, का तथा विश्रान्ति। ''समस्त लोकप्रवृत्तियाँ रसोत्पादन के प्रत्यक्ष या परोक्ष स्त्रोत हैं। संसार में कोई भी ऐसा कार्य, गति या दृश्य नहीं है जिससे रस का प्रतिपादन नहीं होता है।''[3]

भिन्न–भिन्न विद्वानों नें संगीत रस पर अपने विचार व्यक्त किये हैं,रस को ''ब्रह्मा स्वाद सहोदर''कहा गया है। ब्रह्मा का स्वरूप ही आनन्दमय है,अतः रस आनन्दमय होना ही चाहिए।सभी ललित कलाएं ब्रह्मा की अभिव्यक्ति और प्राप्ति का साधन है।सभी विद्याओं का सार तत्त्व ब्रह्मा प्राप्ति ही है।रस काव्य और सभी ललित कलाओं का प्राण है। रस के बिना जीवन्तता नहीं होती परन्तु रस अनिवार्यता अनुभवजन्य है। चाहेसंगीत रस हो या काव्य रस । रस की अवस्था ही तन्मयता की अवस्था है।जिसमें आश्रय अनिवर्चनीय सुख काअनुभव करता है।रस की इस अवस्था में विचार इधर उधर नहीं बिखरने पाते,बल्कि मुक्ता

की घटनाएं एक के बाद एक पिरती सी वली आती हैं। रस हो तो संगीत में भाव विह्वलता की स्थिति आ जाती है,वास्तव में संगीत का प्राण ही रस है। कलाकार और श्रोताओं में जो तदात्म्य स्थापित होता है उसका आधार ही रस है।

संगीत में रसाभिव्यक्ति के प्रमुख तत्त्व

रस का विषेय अनिवार्यता मनोवैज्ञानिक है, भौतिक नहीं है। मानव के मन पर किसी एक विशेष स्वर का क्या प्रभाव पड़ता है, यह मनोविज्ञान का विशय है, स्वर का प्रभाव मानव के चित्त पर पड़ता है, इस सम्बंध में सभी विद्वानों ने रस की चर्च करते समय मनोविज्ञान की शरण ली है। मानव की ऐसी प्रवृत्तियाँ जिनकों प्रकृति ने मानव की सारी प्रकृति में सत्रिविष्ट कर रखा है, मूल प्रवृत्तियाँ कहलाती हैं तथा प्रत्येक मूल प्रवृत्ति के साथ एक भाव जुड़ा रहता है और प्रत्येक भाव के साथ कोई न कोई रस। भरत ने रस का सारा ढाँचा मूल प्रवृत्तियों के आधार पर बनाया है, उप्होंने नाट्शास्त्र के माध्यम से मानव की मूल प्रवृत्तियों, उनसे जुड़े स्थायी भावों को जीवन के अभिनयात्मक धरातल पर लाकर रस सिद्धान्त और वर्गीकरण का प्रतिपादन किया है।

1 स्वर :

शास्त्रीय संगीत में मुख्यतः श्रृंगार, करूण, वीर और शांत रसों का समावेश होता है। भरत ने नाट्यशास्त्र में संगीत में स्वरों का विविध रसों में सम्बन्ध बताया है–

षड्ज ऋषभ में वीर ,रौद्र , गंधार, निषाद में करूण।

मध्यम, पंचम में हास्य, धैवत में विभत्स–भयानक।।[4]

''खाद्य पदार्थो में जिस प्रकार 6 भेद होते हैं उसी प्रकार भावों की क्रिया–प्रतिक्रिया से उतपन्न रसों की संख्या प्राचीन विद्वानों ने आठ मानी है।''[5] प्रत्येक स्वर का अपना विशिष्ट रस होता है।नाट्यशास्त्र में विभिन्न रसों के लिये उदात, अनुदात तथा स्वरित और कंपित स्वरों के प्रयोग का निर्देश मिलता है। हास्य ,श्रृंगार के लिये स्वरित और उदात ,वीर रौद्र और अद्भुत के लिय उदात्त और कंपित करूण वात्सल्य भयानक के लिये उदात्त स्वरित और कंपित का प्रयोग करना चाहियें–

स्वर	**श्रस**	**स्थायी भाव**
षड्ज	वीर, अद्भुत, रौद्र	उत्साह, विस्मय

ऋषभ	वीर, अद्भुत, रौद्र	उत्साह,विस्मय,क्रोध
गान्धार	करुण	शोक
मध्यम	शृंगार	रति, हास
पंचम	शृंगार	रति, हास
धैवत	वीभत्स, भयानक	भय, जुगुप्सा
निषाद	करुण	शोक

यही स्वर जब जातियों में अंश स्वर बनाते हैं, तो उस जाति के निर्धारित रस भाव की प्राप्ति होती है। जैसे यदि अंश स्वर षड्ज है तो वीर, अद्भुत, आदि मध्यम या पंचम होने पर शृंगार अथवा गान्धार या निषाद होने पर करुण रस को अभिव्यक्तिकरते हैं। यह अंश स्वर ही जाती का प्रारम्भिक स्वर होने के कारण मूल रस का आधार भी बनता है।

''संगीत मकरन्द'' में षड्ज से निषाद तक स्वरों में क्रमशः अद्भुत एवं वीर, रौद्र, शान्त, हास्य, शृंगार, वीभत्स तथा करुण रस का निर्देश दिया गया है।

काव्यशास्त्र में वर्ण की ध्वनि का रस से सम्बंध जोड़ा जाता है जो बंदिशों की रचना में सहायक होता है। भरत ने वर्णों ही पहीं रसों की सिद्धि के लिए बंदिशों की रचना में स्वरों की प्रधानता को रस निष्पत्ति का आधार माना है। उनका निर्देश है कि जब जिस जाती में जो स्वर बलवान हो तब प्रयोक्ताओं को उसी केस्वर के रस में गायन करना चाहिए।

उपरोक्त रस सिद्धान्तों में केवल शुद्ध स्वरों का संदर्भ है, आज पाँच विकृत स्वर भी संगीत में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं, अतः आज यह सिद्धान्त अक्षरशलागू होना इस दृष्टिकोण से असंभव है। शुद्ध स्वरों द्वारा शान्त रस, (जैसे बिलावल, केदार, एवं कल्याण अंग) विकृत स्वरों द्वारा अन्य रस की उत्पत्ति होती है जैसे दरबारी कान्हणा में कोमल गंधार वात्सल्स रस, हिंडोल, शंकरा, मालकंस, सारंग आदि हृदय में वीरता, उत्साह का संचार करते हैं, बाहर, बागेश्वरी आदि से हृदय में अनुराग उत्पन्न होता है और ये शृंगार रस उत्पन्न करते हैं। शेक प्रधान करुण रस भी संगीत की विशिष्ट अनुभूति देता है। रस की यही सबसे बड़ी विशेषता है। पीलू की लोकप्रिय ठुमरी ''पीऊ की बोलि न बोल'' के साथ भले ही विरहणि की टीस मुखरित होती है,

पर रसात्मक अलौकिक आनन्द भी प्रापत होता है। जोगिया, पीलू, तोड़ी, श्री आदि राग ह्रबय में दया, दुःख, करुणा का भाव उत्पन्न करते हैं।

आधुनिक विद्वानों ने भी अपने ग्रंथों में राग स्वर रस पर विचार व्यक्त किये हैं। पं० भातखण्डे ने स्वरों का रसों से सम्बंध इस प्रकार बताया है।

''संधि प्रकाश रागों का उपयोग करुण और शांत रस तथा इसके अंतर्भूत रसों का परिपोषक होता है। तीव्र रे ध और ग वाले राग श्रृंगार, हास्य और इनके अन्तर्गत रसों के पोषक होते हैं तथा कोमल ग और नि वाले राग वीर, रौद्र और भयानक रसों के पोषक होते हैं।''

यद्यपि संगीप कला इतनी सूक्ष्म और असीम है कि स्वर विशेष के आधर पर रस विषयक नियम नहीं बनाया जा सकता। अपनी प्रतिभा से कलाकार वीर रस प्रधान समझेजाने वाले स्वरों के माध्यम से करुण रस का प्रभाव उत्पन्न कर सकता है, तथा संगीत में रस का अपना महत्व है।

2 बंदिश द्वारा रस :

एक ही राग में बंदिश के द्वारा रस बदलता है जैसे :

वात्सल्य रस :

खेलत आंगन नंद लाल

चंचल चरण चपट पड़े

बेहाल हो ललना।

श्रृंगार रस :

पयल मेरी बजे रे सजना

कैसे आऊ तारे मंदरवा।

भक्तिपूर्ण रस :

जय माल रानी तू मान मानी विद्यासरस्वती बैकुंठ की निशानी।

3 तालों द्वारा रस :

संगीत में रसाभिव्यक्ति के तत्त्वों में ताल–विलम्बित लय–मध्य लय,

द्रुत लय आदि, ताल के विशिष्ट वर्ण, आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिनमें संगीत में गंभीरता अथवा चंचलता का आविर्भाव किया जा सकता है। कुल तालें इस प्रकार हैं:

दादरा :– वात्सल्य रस

कहरवा :– शृंगार रस

एकताल, धमार :– शृंगार एवं अन्य रस

चौताल–आड़ा चारताल :– वीर रस

4वाद्यों द्वारा रस :

सारंगी, वायलिन : करुण रस

तबला, ढोलक : शृंगार रस

पखावज : वीर रस

वाद्य वृन्द : शृंगार, करुणा आदि

5 शैली द्वारा रस :

मानव मन के सूक्ष्म भावों को संगीत में विभिन्न शैलियों के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। ध्रुपद को वीर, करुण, शांत, अद्भुत रस के लिए सक्षम माना गया है ख्याल के शब्द शृंगार रस प्रधान हाकने के कारण, शृंगार, अद्भुत आदि अनेक रसों की अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त है। ठुमरी मुख्यतः शृंगार रस प्रधान ही होती है। खट राग अद्भुत रस के प्रतीक हैं।

6 लय द्वारा रस :

रस निर्धारण में विभिन्न लयों का आवश्य महत्त्व है। शन्त स्थिति के लिए विलम्बित लय और उत्तेजनापूर्ण स्थिति के लिए द्रुत लय की प्रधानता है। विलंबित लय में ध्रुपद शांत, भक्ति, करुण और शृंगार रसो की अभिव्यक्ति करता है। ध्रुपद द्रुत काल में अर्थात् सूलफाक्ता, ब्रह्म, गणेश, लक्ष्मी आदि तालों के साथवीर, अद्भुत रौद्र तथा भक्ति रसो की अभिव्यक्ति करता है। इसी प्रकार विलंबित ख्याल, विलंबित ध्रुपद की भाँति और द्रुत ख्याल, द्रुत ध्रुपद की भाँति रसाभिव्यक्ति करते हैं। रस निष्पत्तिमें लय का अपना महत्त्व है। मन की भी एक लय होती ह, जिसके अनुसार वह भाव ग्रहण करता है। संगीत की लय, बेदिश की प्रकृति, राग के स्वभाव के अनुसार परस्पर तालमेल होने पर लय

विशेष रस की निष्पत्ति होगी। ''आओ'' शब्द की आज्ञा, अनुरोध सूचक बोधगम्यता में सभी की लय अलग–अलग है। ''पी की बोली न बोल'' बंदिश को यदी द्रुत लय में प्रस्तुत किया जाए तो विरहाणी नायिका के भावों की अभिव्यक्ति कैसे होगी। रागों की प्रकृति शब्दों के अनुसार लय ही रसाभिव्यक्ति कर सकती है। बंदिश तथा रसग में समन्वय होना चाहिए। सौंदर्यशास्त्र के अपने अलग नियम हैं, जिनके पालन से ही रसानुभूति संभव है।

7 ऋतुओं के अनुसार रागों का चयन :

संगीतात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम केवल ध्वनि है जिसके उतार–चढ़ाव, लय आंदोलन के पन से अलग–अलग भाव उत्पन्न किए जा सकते हैं। ध्वनि से विशिष्ट भावों की अभिव्यक्ति होती है।

1. भारत का नाटयशास्त्र अध्याय पृ० 342
2. सौन्दर्य , रस एवं संगीत ,स्वतंत्र शर्मा पृ० 115
3. संगीत निबन्द माला ,एम विजयलक्ष्मी पृ०109
4. सौन्दर्य , रस एवं संगीत ,स्वतंत्र शर्मा पृ०120
5. संगीत निबन्द माला ,एम विजयलक्ष्मी पृ०108